

पर्यावरण संतुलन और ऋतु परिवर्तन के अध्ययन में पारंपरिक काल-मान पद्धतियों की प्रासंगिकता

(एक PRISMA-ScR-निर्देशित विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन)

Parhlad Singh Ahluwalia, Shodh Prakashan, Hisar, Haryana

सार

पृष्ठभूमि: भारतीय कृषि, जल-प्रबंधन और सांस्कृतिक जीवन ऋतु-चक्र पर आधारित हैं। आधुनिक जलवायु-विज्ञान ऋतु-परिवर्तन को उपग्रह, रेडियोमीटर और गणितीय मॉडलों से मापता है। इससे बहुत पहले वैदिक, वेदाङ्ग-ज्योतिष, सिद्धान्त-ज्योतिष और आयुर्वेद की परंपराओं ने वर्ष, अयन, ऋतु, मास और पक्ष के आधार पर एक सुव्यवस्थित काल-मान प्रणाली विकसित की थी।

उद्देश्य: यह अध्ययन जाँचता है कि पारंपरिक काल-मान पद्धतियाँ (क) खगोलीय-गणितीय शुद्धता, (ख) पारिस्थितिक-जैविक संगति, (ग) सामुदायिक संचरण और (घ) आधुनिक जलवायु-साक्ष्यों के साथ संवाद, इन चार कसौटियों पर कितनी प्रासंगिक हैं और उनकी सीमाएँ क्या हैं।

पद्धति: PRISMA-ScR (स्कोपिंग समीक्षा) के सिद्धांतों के अनुरूप संरचित साहित्य-मानचित्रण किया गया। केवल 2024 या उससे पूर्व के स्रोत शामिल किए गए। मूल संस्कृत ग्रंथों के उद्धरणों का विश्लेषण किया गया। भारतीय एवं वैश्विक जलवायु-अध्ययनों से तुलनात्मक आँकड़े लिए गए। काल-मान स्थिरांकों की तुलना ग्रंथों की युग-संख्याओं से पुनर्गणित मानों के आधार पर की गई।

परिणाम: सूर्यसिद्धान्त और आर्यभटीय के नाक्षत्र-वर्ष मान आधुनिक मान से लगभग 0.002 दिन भिन्न हैं। सिनोडिक मास में अंतर 0.00001 दिन से कम है। वेदाङ्ग-ज्योतिष का 366-दिवसीय वर्ष लगभग 0.76 दिन अधिक है, परंतु पाँच-वर्षीय युग के भीतर अधिकमास की संरचना ऋतु-सामंजस्य की स्पष्ट चेतना दर्शाती है। नाक्षत्र और सायन वर्ष के अंतर (लगभग 0.0142 दिन प्रतिवर्ष) के कारण निरयण पंचांगों में ऋतु-विचलन लगभग 70 वर्ष में एक दिन की दर से जमा होता है। इसका अर्थ है कि परंपरा मानक के रूप में नहीं, बल्कि बहु-साक्ष्य ढाँचे में सांस्कृतिक-पारिस्थितिक अभिलेख और परिकल्पना-स्रोत के रूप में प्रासंगिक है।

निष्कर्ष: पारंपरिक काल-मान पद्धतियाँ आधुनिक जलवायु-विज्ञान का विकल्प नहीं हैं, किंतु वे फिनोलॉजी-संकेतक, स्थानीय अनुकूलन-ज्ञान और सामुदायिक पर्यावरण-नैतिकता का मूल्यवान् पूरक स्रोत हैं।

मुख्य शब्द: पारंपरिक काल-मान, ऋतु परिवर्तन, पंचांग, वेदाङ्ग ज्योतिष, ऋतुचर्या, भारतीय मानसून, पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान, PRISMA-ScR

1. प्रस्तावना

भारतीय उपमहाद्वीप की अर्थव्यवस्था, खाद्य-सुरक्षा और सांस्कृतिक जीवन ऋतु-चक्र, विशेषतः दक्षिण-पश्चिम मानसून, पर टिके हैं। वार्षिक वर्षा का लगभग तीन-चौथाई इसी अवधि में गिरता है [1]। जलवायु परिवर्तन पर अंतर-सरकारी पैनल (IPCC) की छठी

आकलन रिपोर्ट तापन और जल-चक्र में आ रहे परिवर्तनों के साक्ष्य संकलित करती है [2]। ऐसे समय में यह प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या वे पारंपरिक पद्धतियाँ, जिनसे समाज सहस्राब्दियों तक समय और ऋतु का हिसाब रखता आया, आज भी किसी वैज्ञानिक या नीतिगत उपयोग की हैं।

पारिस्थितिकी-साहित्य में "पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान" (Traditional Ecological Knowledge) की अवधारणा इसी प्रश्न से जुड़ी है। इसके अनुसार स्थानीय समुदायों की दीर्घकालीन अवलोकन-परंपरा अनुकूली प्रबंधन के लिए उपयोगी सूचना देती है [3]। यह ज्ञान केवल तथ्यों का संग्रह नहीं है। इसमें अवलोकन, व्यवहार, संस्थाएँ और विश्व-दृष्टि एक साथ गुँथे होते हैं [4]।

भारतीय संदर्भ में यह ज्ञान संस्कारों, पर्वों, भाषा और लोक-स्मृति के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचरित होता रहा है। संस्कार और संस्कृति के समाजशास्त्रीय अध्ययन बताते हैं कि मूल्य और व्यवहार-प्रतिमान भाषा और अनुष्ठानों के माध्यम से सामाजिक स्मृति बनते हैं [5–7]। पर्यावरण-संरक्षण के वैश्विक परिदृश्य में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन भी दर्शाता है कि स्थानीय, अनौपचारिक और पारंपरिक ज्ञान-धारक समुदाय संरक्षण-व्यवहार के वाहक रहे हैं [8]।

इसी के साथ आलोचनात्मक दृष्टि आवश्यक है। भारत का पारिस्थितिक इतिहास दिखाता है कि पारंपरिक संसाधन-प्रबंधन के रूप भू-स्वामित्व, जाति और राज्य-सत्ता से प्रभावित रहे हैं। उसे एकरूप या आदर्श नहीं माना जा सकता [9]। स्थानीय और वैज्ञानिक ज्ञान को परस्पर विरोधी मानने वाली द्वैत-दृष्टि की भी आलोचना हुई है। इसके अनुसार दोनों ज्ञान-प्रणालियों में भेद की रेखा उतनी स्पष्ट नहीं है जितनी प्रायः मान ली जाती है [10]।

शोध-अंतराल (Research Gap): पारंपरिक काल-मान पर शोध प्रायः तीन खंडों में बँटा है: ज्योतिष-इतिहास, आयुर्वेद और लोक-कृषि। आधुनिक जलवायु-आँकड़ों के साथ इनका एकीकृत और मात्रात्मक तुलनात्मक विश्लेषण बहुत कम हुआ है। यह अध्ययन इसी अंतराल को भरने का प्रयास है।

2. शोध-प्रश्न और उद्देश्य

शोध-प्रश्न:

- पारंपरिक भारतीय काल-मान पद्धतियाँ ऋतु और पर्यावरण-संतुलन को किस वैचारिक एवं गणितीय ढाँचे में परिभाषित करती हैं?
- उनके खगोलीय स्थिरांक आधुनिक संदर्भ-मानों से कितने निकट हैं और कहाँ विचलन है?
- आधुनिक भारतीय और वैश्विक ऋतु-परिवर्तन साक्ष्यों के साथ इन पद्धतियों का संवाद किस रूप में संभव है?
- इनकी वैज्ञानिक एवं नीतिगत सीमाएँ क्या हैं?

उद्देश्य: (i) शास्त्रीय स्रोतों का विश्लेषण, (ii) तुलनात्मक मात्रात्मक आँकड़ों का संकलन, (iii) संबंधित शोध-समीक्षाओं और उनके निष्कर्षों का संश्लेषण, (iv) बहु-दृष्टिकोणीय आलोचनात्मक मूल्यांकन।

3. शोध-पद्धति

3.1 अध्ययन-अभिकल्प

यह अध्ययन स्कोपिंग समीक्षा है। इसकी रिपोर्टिंग PRISMA-ScR दिशानिर्देश [11] के अनुरूप है, जिसे PRISMA 2020 के पारदर्शिता-सिद्धांतों [12] और स्कोपिंग-अध्ययनों के मूल पद्धति-ढाँचे [13] का समर्थन प्राप्त है।

3.2 पात्रता-मानदंड

- **समावेशन:** (क) 2024 या उससे पूर्व प्रकाशित स्रोत; (ख) मूल संस्कृत ग्रंथों के आलोचनात्मक संस्करण या अनुवाद; (ग) भारतीय मानसून, जलवायु-प्रवृत्ति, फिनोलॉजी या पारंपरिक ज्ञान पर सहकर्म-समीक्षित शोध; (घ) विषय से प्रत्यक्ष संबंध।
- **अपवर्जन:** (क) 2024 के बाद के स्रोत; (ख) बिना वर्ष वाले (n.d.) अभिलेख; (ग) विषय से असंबद्ध।

3.3 स्रोत और छँटाई (PRISMA-ScR प्रवाह)

इनके अतिरिक्त 68 बाह्य स्रोत उद्देश्यपूर्ण (purposive) चयन से जोड़े गए: मूल ग्रंथ-संस्करण, खगोल-इतिहास, मानसून-जलवायु-विज्ञान, पुरा-जलवायु, फिनोलॉजी और स्थानीय-ज्ञान संबंधी समीक्षाएँ। कुल सम्मिलित संदर्भ 68 हैं। यह पारदर्शी रूप से उल्लेखनीय है कि बाह्य स्रोतों का चयन किसी डेटाबेस की व्यवस्थित खोज-स्ट्रिंग से नहीं, बल्कि विषय-विशेषज्ञ चयन से हुआ।

3.4 विश्लेषण-विधि

- **गुणात्मक:** मूल संस्कृत श्लोकों का पाठ-विश्लेषण और अर्थ-निर्वचना।
- **मात्रात्मक:** ग्रंथ-प्रदत्त युग-संख्याओं (जैसे आर्यभटीय और सूर्यसिद्धान्त में सावन-दिवस, सौर वर्ष और चांद्र मास की संख्याएँ) से वर्ष-मान और मास-मान का पुनर्गणन और आधुनिक संदर्भ-मान से तुलना।
- **तुलनात्मक:** भारतीय और वैश्विक जलवायु-प्रवृत्ति अध्ययनों के परिणामों का सारणीकरण।

3.5 नैतिक एवं मौलिकता-संबंधी विचार

सामाजिक-विज्ञान शोध के नैतिक सिद्धांतों (स्रोतों का ईमानदार श्रेय, पक्षपात-निषेध, पारदर्शिता) का पालन किया गया [14]। साहित्यिक चौर्य-निवारण के लिए पाठ मौलिक रूप से रचा गया, उद्धरण सीमित और उचित रूप से अंकित किए गए हैं, और प्रकाशन-पूर्व पाठ-समानता जाँच की अनुशंसा की जाती है [15]।

4. परिणाम और विश्लेषण

4.1 साहित्य का समग्र मानचित्र

सम्मिलित 68 स्रोतों में 14 मूल संस्कृत ग्रंथों के संस्करण या अनुवाद हैं (वैदिक संहिताएँ, वेदाङ्ग-ज्योतिष, धर्मशास्त्र, सिद्धान्त-ज्योतिष, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र और बृहत्संहिता) और 13 खगोल-इतिहास, कालगणना और आयुर्वेद-इतिहास की द्वितीयक कृतियाँ हैं। शेष स्रोत मानसून-जलवायु, पुरा-जलवायु, फिनोलॉजी, पारंपरिक-ज्ञान संबंधी समीक्षाओं और पद्धति-दिशानिर्देशों से संबंधित हैं।

4.2 पारंपरिक काल-मान का वैचारिक एवं गणितीय आधार

(क) ऋत और काल: वैदिक विश्व-दृष्टि। ऋग्वेद का अधमर्षण सूक्त काल की उत्पत्ति को ऋत (ब्रह्मांडीय व्यवस्था) से जोड़ता है [16]:

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत । ततो राज्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥
— ऋग्वेद 10.190.1-2

भावार्थ: तप से ऋत और सत्य उत्पन्न हुए, तदनंतर रात्रि और जलमय सागर; उस जलमय सागर से संवत्सर उत्पन्न हुआ, जो दिन-रात का विधान करता है।

विश्लेषणात्मक रूप से यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि समय (संवत्सर) और जल (अर्णव) एक ही उत्पत्ति-क्रम में रखे गए हैं। यह वर्षा-चक्र और काल-चक्र के घनिष्ठ संबंध की प्रारंभिक सांस्कृतिक स्वीकृति है। इसी सूक्त का अगला मंत्र सूर्य-चंद्र के "यथापूर्व" (पूर्व-क्रम से) व्यवस्थित होने की बात करता है, जो नियमितता की धारणा है।

वर्ष-चक्र का एक प्रसिद्ध रूपक ऋग्वेद में मिलता है [16]:

द्वादश प्रथयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत । तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽपिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥

— ऋग्वेद 1.164.48

भावार्थ: एक चक्र में बारह नेमियाँ और तीन नाभियाँ हैं; उसमें तीन सौ साठ शङ्कु (कीलें) एक साथ लगे हैं, जो चलायमान हैं। परंपरागत व्याख्या में बारह मास और 360 दिन संकेतित हैं। इस व्याख्या पर विद्वान सहमत नहीं हैं। कुछ इसे खगोलीय आँकड़ा मानते हैं, तो कुछ इसे रूपकात्मक संख्या [22]। यह असहमति स्वयं एक महत्वपूर्ण शोध-परिणाम है। यहाँ 360 का आँकड़ा सावधानी से पढ़ना आवश्यक है, क्योंकि यह वास्तविक सौर वर्ष (लगभग 365.24 दिन) से स्पष्ट भिन्न है।

(ख) पृथ्वी और पर्जन्यः पर्यावरण-नैतिकता। अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त पृथ्वी को माता और पर्जन्य (वर्षा) को पिता के रूप में देखता है [17]:

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ पृथिवीं धारयन्ति । सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥

— अथर्ववेद 12.1.1

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ।

— अथर्ववेद 12.1.12

भावार्थ: पृथ्वी को सत्य, ऋत, दीक्षा, तप, ज्ञान और यज्ञ धारण करते हैं; मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ और पर्जन्य हमारा पिता है। यह मंत्र केवल काव्य नहीं, एक नैतिक-पारिस्थितिक अनुबंध है। मानव को पृथ्वी का "पुत्र" कहना संसाधन पर अधिकार के स्थान पर कर्तव्य का भाव उत्पन्न करता है। इसी भाव की शांति-परंपरा शुक्ल यजुर्वेद (36.17) में है [18]:

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

यहाँ आकाश, अंतरिक्ष, पृथ्वी, जल, औषधि और वनस्पति सभी पर्यावरणीय घटकों की शांति (संतुलन) की कामना की गई है। यह पारिस्थितिक-तंत्र के अंतर्संबंध की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है।

(ग) वेदाङ्ग-ज्योतिषः पाँच-वर्षीय युग और ऋतु-सामंजस्य। लगध-प्रणीत वेदाङ्ग-ज्योतिष (ऋक् एवं याजुष पाठ) कालगणना का सबसे प्राचीन उपलब्ध सुव्यवस्थित ग्रंथ है। इसका आरंभ ही काल के पाँच घटकों को नमन करता है [19]:

पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम् । दिनत्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः ॥

— वेदाङ्ग ज्योतिष (ऋक्पाठ, श्लोक 1)

भावार्थ: पाँच संवत्सरों वाले युग के अध्यक्ष प्रजापति को, जिनके अंग दिन, ऋतु, अयन और मास हैं, पवित्र होकर शीश नवाकर प्रणाम करके। (श्लोक-संख्या पाठ-भेद के अनुसार भिन्न हो सकती है।)

इसी ग्रंथ में युग के आरंभ की खगोलीय शर्त दी गई है [19]:

स्वराक्रमेते सोमाकौ यदा साकं सवासवौ । स्यात्तदादि युगं माघस्तपः शुक्लोऽयनं ह्यदक् ॥

अर्थात् जब सूर्य और चंद्र धनिष्ठा (श्रविष्ठा) नक्षत्र के आदि में एक साथ मिलते हैं, तब युग, माघ मास, तप (शिशिर) ऋतु, शुक्ल पक्ष और उत्तरायण का आरंभ होता है। इस प्रणाली में 5 सौर वर्षों के एक युग में 1830 सावन दिन और 62 चांद्र मास हैं। 60 सौर मास के मुकाबले 62 चांद्र मास का अर्थ है कि पाँच वर्षों में दो अधिकमास जोड़े जाते हैं। यह **चांद्र-सौर समन्वय द्वारा पर्वों को ऋतु से बाँधे रखने की सोची-समझी तकनीक** है।

इस ग्रंथ के काल-निर्धारण पर मतभेद है। परंपरागत गणना, जो उत्तरायण-बिंदु के धनिष्ठा-आदि पर होने से अभिप्राय निकालती है, इसे ईसा-पूर्व दूसरी सहस्राब्दी के उत्तरार्ध की ओर ले जाती है [19]। पिंघ्री इसमें मेसोपोटामियाई प्रभाव देखते हैं। दिन की अधिकतम और न्यूनतम अवधि का 3:2 (18 और 12 मुहूर्त) अनुपात उच्च अक्षांश के अनुरूप माना जाता है और उनके अनुसार इसका काल लगभग ईसा-पूर्व 400 के आसपास है [20]। ओहाशी ने वैदिक और उत्तर-वैदिक भारत में खगोलीय प्रेक्षणों के विकास का समीक्षात्मक चित्र प्रस्तुत किया है [21]। ग्रंथ में दिए गए दिन की अवधि-अनुपात की यह विसंगति एक **पारदर्शी सीमा** के रूप में अंकित की जानी चाहिए: परंपरा के सारे आँकड़े सभी भारतीय अक्षांशों के लिए समान रूप से मान्य नहीं हैं।

(घ) धर्मशास्त्र और गीता: काल की इकाइयाँ और चक्रीयता। मनुस्मृति मानवीय और दैविक कालमानों की अवधारणा देती है [23]:

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशतु ताः कलाः । त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः ॥

— मनुस्मृति 1.64

दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः । अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्यादक्षिणायनम् ॥

— मनुस्मृति 1.68

भावार्थ: अठारह निमेष की एक काष्ठा, तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त और तीस मुहूर्त का अहोरात्र। देवताओं का अहोरात्र मनुष्यों का एक वर्ष है; उसमें उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रि है। इस वर्णन में **सूक्ष्म से स्थूल तक एक पदानुक्रमित इकाई-तंत्र** है और ऋतु-चक्र के बड़े विभाजन (अयन) को मानवीय समय से जोड़ा गया है। यह इकाई-बद्धता इसी बात का संकेत है कि काल केवल अनुभूति नहीं, गणनीय राशि थी।

भगवद्गीता वर्षा, अन्न और यज्ञ को चक्रीय संबंध में रखती है और चक्र के उल्लंघन को नैतिक दोष बताती है [24]:

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः । यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ — गीता 3.14

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः । अधायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ — गीता 3.16

...मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ — गीता 10.35

भावार्थ: प्राणी अन्न से, अन्न वर्षा से, वर्षा यज्ञ (सामूहिक कर्म) से और यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है। जो इस प्रवर्तित चक्र का अनुसरण नहीं करता, वह इंद्रिय-सुख में रमा हुआ व्यक्ति व्यर्थ ही जीवित रहता है। मासों में मार्गशीर्ष और ऋतुओं में कुसुमाकर (वसंत) की विभूति-रूप गणना भी मास-ऋतु-क्रम की सामाजिक सुपरिचितता दर्शाती है। इन्हें वैज्ञानिक कथन के रूप में नहीं, बल्कि **पारिस्थितिक-नैतिक सिद्धान्त** के रूप में पढ़ना उचित है। पर्जन्य से अन्न की श्रृंखला आधुनिक खाद्य-जल-जलवायु संबंध की सांस्कृतिक पूर्व-अभिव्यक्ति है।

(ड) सिद्धान्त-ज्योतिष: गणितीय परिष्कार। सूर्यसिद्धान्त में काल की दो श्रेणियाँ की गई हैं [25]:

लोकानामन्तकृत्कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः । स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्यते ॥
— सूर्यसिद्धान्त 1.10

भावार्थ: एक काल लोकों का अंत करने वाला (अमूर्त, दार्शनिक) है और दूसरा गणनात्मक (मूर्त, मापनीय); यह स्थूल और सूक्ष्म रूपों में दो प्रकार का कहा गया है। मापनीय काल की यही परिकल्पना ग्रंथ को **परिकल्पना और संशोधन के लिए खुला** रखती है। आर्यभट्ट ने कल्प-युग-आधारित पद्धति में भगण-संख्याएँ देकर कालमान को उच्च परिशुद्धता तक पहुँचाया [26]। भारतीय गणित और खगोल का यह परिष्कार अब विस्तृत ऐतिहासिक अध्ययनों में स्थापित है [27,28]।

4.3 कालमान-स्थिरांकों की तुलना: तालिका 2

सारणी में ग्रंथ-प्रदत्त युग-संख्याओं से लेखक ने औसत मान पुनर्गणित किए हैं। आर्यभटीय में एक महायुग में 4,320,000 सौर वर्ष, 1,577,917,500 सावन दिन और 53,433,336 सिनोडिक मास हैं [26]। सूर्यसिद्धान्त में सावन दिन 1,577,917,828 हैं [25]। आधुनिक संदर्भ-मान खगोलीय मानक हैं [28]।

तालिका 2: पारंपरिक एवं आधुनिक काल-मान स्थिरांकों की तुलना

पद्धति	वर्ष-मान (दिन)	आधुनिक संदर्भ से अंतर	चांद्र (सिनोडिक) मास (दिन)	आधुनिक मान से अंतर
वेदाङ्ग ज्योतिष [19]	366.0000 (सावन वर्ष; 1830÷5)	+0.758 दिन (+0.21%), उष्णकटिबंधीय वर्ष की तुलना में	29.5161 (1830÷62)	-0.0145 दिन (-0.05%)
आर्यभटीय [26]	365.2587 (नाक्षत्र)	+0.0023 दिन (नाक्षत्र वर्ष की तुलना में)	29.530582	≈ -0.000007 दिन
सूर्यसिद्धान्त [25]	365.2588 (नाक्षत्र)	+0.0024 दिन (नाक्षत्र वर्ष की तुलना में)	29.530588	< 0.00001 दिन
आधुनिक संदर्भ	365.2422 (उष्णकटिबंधीय); 365.2564 (नाक्षत्र)	—	29.530589	—

टिप्पणी: तालिका के पारंपरिक मान ग्रंथों की युग-संख्याओं से लेखक द्वारा पुनर्गणित हैं। आधुनिक मान स्थापित खगोलीय संदर्भ-मान हैं। गणना का आधार अनुपात-मात्र है, किसी ग्रंथ-वाक्य का प्रत्यक्ष उद्धरण नहीं।

तालिका का विश्लेषण: (i) सिद्धान्त-काल की दोनों पद्धतियाँ नाक्षत्र वर्ष को लगभग 0.002 दिन (लगभग तीन मिनट) की परिशुद्धता से पकड़ती हैं, जो प्रेक्षण-पूर्व दूरबीन युग की दृष्टि से उल्लेखनीय है। (ii) वेदाङ्ग-काल का 366 दिवसीय वर्ष पाँच वर्ष के युग में लगभग 3.8 दिन का संचित त्रुटि-बोध देता है, किंतु अधिकमास की संरचना (पाँच वर्ष में दो) ऋतु और मास के अंतराल को समंजित करने की सजग चेष्टा दर्शाती है। (iii) सिनोडिक मास का मान सिद्धान्त-काल में लगभग आधुनिक मान के बराबर है, जबकि वेदाङ्ग-काल में 0.05% भिन्न है।

ऋतु-विचलन का एक मात्रात्मक निहितार्थ। सारणी के नाक्षत्र (365.2564) और उष्णकटिबंधीय (365.2422) वर्ष का अंतर लगभग 0.0142 दिन प्रतिवर्ष है, अर्थात् लगभग 70.6 वर्ष में एक दिन। निरयण (नाक्षत्र) गणना पर आधारित पंचांग इस कारण ऋतु-चक्र से धीरे-धीरे खिसकते हैं। शून्य अयनांश का वर्ष लगभग तीसरी शताब्दी माना जाता है [29]। तब से लगभग 1,700 वर्ष में यह संचित अंतर लगभग 24 दिन बैठता है। यह वही दूरी है जिससे मकर संक्रांति का समय दिसंबर के उत्तरार्ध की जगह आज जनवरी के मध्य में पड़ता है। भारत की 1955 की कैलेंडर सुधार समिति ने राष्ट्रीय पंचांग इसी कारण सायन (उष्णकटिबंधीय) आधार पर बनाया, जिसमें चैत्र 1 सामान्यतः 22 मार्च को पड़ता है [29]।

यह विश्लेषण महत्वपूर्ण यथार्थ उजागर करता है। **पारंपरिक निरयण पंचांग स्वयं ऋतु के दीर्घकालीन मापदंड के रूप में अविकल प्रयोग-योग्य नहीं है**, और यह बात परंपरा के भीतर के गणितज्ञों को ज्ञात थी। अधिकमास-नियम (लगभग प्रत्येक 32-33 माह में एक) और पंचांग-संशोधन की परंपरा [30,31] इसी चिंता के संकेत हैं।

4.4 ऋतु-चक्र और आयुर्वेदिक ऋतुचर्या

आयुर्वेद का ऋतु-वर्गीकरण द्विमासिक छह ऋतुओं पर आधारित है। अष्टाङ्गहृदय इसे स्पष्ट रूप से लिखता है [32]:

मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात् षडृतवः स्मृताः । शिशिरोऽथ वसन्तश्च ग्रीष्मो वर्षाशरद्धिमाः ॥

— अष्टाङ्गहृदय, सूत्रस्थान 3.1

भावार्थ: माघ से आरंभ कर दो-दो मास की संख्या से क्रमशः छह ऋतुएँ मानी गई हैं: शिशिर, वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद और हिम (हेमंत)। सुश्रुत संहिता भी वर्ष को उत्तरायण और दक्षिणायन में बाँटकर इन्हीं ऋतुओं की संरचना बताती है, और इसके आधार पर आदान-विसर्ग काल (सूर्य द्वारा शरीर का बल ग्रहण करने और प्रदान करने की अवस्थाएँ) की व्याख्या करती है [33]। चिकित्सा-इतिहास के विद्वान यह रेखांकित करते हैं कि आयुर्वेद के मूल ग्रंथों में ऋतु-विचार केवल कैलेंडर-सूचना नहीं, बल्कि आहार-विहार, रोग-प्रवृत्ति और औषधि-संग्रह-काल निर्धारित करने वाला क्रियात्मक सिद्धांत है [34]।

जैव-चिकित्सीय संगति। आधुनिक काल-जैविकी (chronobiology) भी स्वीकार करती है कि मनुष्य सहित जीव दैनिक, वार्षिक और चांद्र चक्रों के प्रति जैविक अनुकूलन दर्शाते हैं [36]। इसे ऋतुचर्या की जैविक प्रासंगिकता के संकेत के रूप में देखा जा सकता है, पर प्रत्येक ऋतुचर्या-निर्देश का नैदानिक सत्यापन अभी शेष है। पारंपरिक चिकित्सा-पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन भी यही बताता है कि आयुर्वेद और चीनी चिकित्सा, दोनों में मौसम-आधारित जीवनशैली का सिद्धांत है, पर प्रमाण-स्तर अलग-अलग हैं [35]।

भौगोलिक सीमा। छह-ऋतु ढाँचा मुख्यतः गंगा-यमुना के मैदान की मौसमी लय के अनुरूप है। केरल, पूर्वोत्तर, राजस्थान या हिमालयी क्षेत्र में ऋतु-आरंभ की तिथियाँ भिन्न हैं। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग की सामान्य मानक विभाजन-व्यवस्था चार ऋतुओं की है: शीत (जनवरी-फरवरी), पूर्व-मानसून (मार्च-मई), दक्षिण-पश्चिम मानसून (जून-सितंबर) और मानसून-पश्चात (अक्टूबर-दिसंबर) [43]। लेखक की व्याख्यात्मक मैपिंग के अनुसार पारंपरिक वर्षा ऋतु (श्रावण-भाद्रपद) मानसून के चरम से मेल खाती है, जबकि

शरद और हेमंत का मिश्रण मानसून-पश्चात और शीत ऋतु में बँट जाता है। यह मैपिंग अनुमानात्मक है और स्थान-विशेष सत्यापन माँगती है।

4.5 कृषि, जल और वर्षा-पूर्वानुमान की परंपरा

बृहत्संहिता और वर्षा-संकेत। वराहमिहिर की बृहत्संहिता में वर्षा-गर्भ-लक्षण का अध्याय है, जिसमें वर्ष के प्रारंभिक संकेतों (बादल, वायु, ग्रह-स्थिति) को आगामी वर्षा से जोड़ा गया है [37]। इन नियमों का आधुनिक वैज्ञानिक सत्यापन सीमित है। वैज्ञानिक रूप से इसे **परिकल्पना-स्रोत** के रूप में देखना सुरक्षित है, पूर्वानुमान-मानक के रूप में नहीं।

कौटिल्य अर्थशास्त्र और वर्षा-मापन। अर्थशास्त्र में राज्य-कोषागार के प्रबंध के संदर्भ में वर्षा-मापन और भूमि-प्रदेश के अनुसार अपेक्षित वर्षा के पृथक मान का उल्लेख है [38]। यह संस्थागत स्तर पर मौसम-डेटा को प्रशासन से जोड़ने के प्रारंभिक प्रमाणों में है।

किसान-स्तरीय निर्णय। आधुनिक अध्ययन प्रमाणित करते हैं कि जलवायु-सूचना का किसान-स्तर पर उपयोग तभी प्रभावी होता है जब वह बुवाई-जैसे स्थानीय निर्णयों के अनुरूप हो। दक्षिण भारत में वर्षा-आश्रित मूँगफली पर अध्ययन इसका उदाहरण है [39]। भारतीय मानसून और कृषि-सकल घरेलू उत्पाद के संबंध का विश्लेषण भी दर्शाता है कि कृषि की मानसून-निर्भरता घटी है, किंतु मौसमी विचलन अब भी ग्रामीण आय को गहराई से प्रभावित करते हैं [40]। इसलिए ऋतु-आरंभ की सटीक सूचना का सांस्कृतिक और व्यावहारिक महत्त्व बना हुआ है।

जल-संरक्षण का काल-बोध। भारत की पारंपरिक जल-संरचनाएँ (तालाब, बावड़ी, कुंड) वर्षा-ऋतु के आगमन और अवधि के सूक्ष्म स्थानीय बोध पर आधारित थीं। अनुपम मिश्र के प्रसिद्ध अध्ययन ने तालाब-निर्माण और रखरखाव को सामुदायिक काल-क्रम से जोड़कर दर्ज किया [41]। विज्ञान और पर्यावरण केंद्र के संकलन ने पारंपरिक जल-संचयन प्रणालियों की विविधता और उनके क्षरण का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया [42]। ये स्रोत गुणात्मक हैं और इनके मात्रात्मक जल-विज्ञान-सत्यापन की आवश्यकता बनी हुई है।

4.6 आधुनिक जलवायु-साक्ष्य: भारत

वर्षा-प्रतिरूपा। अखिल भारतीय मासिक एवं मौसमी वर्षा-श्रृंखला (1871 से) के संकलन ने भारतीय मानसून-अध्ययन को दीर्घकालीन आधार दिया [43]। इसके अनुसार अंतर-वार्षिक परिवर्तनशीलता बड़ी है। ग्रीष्म-मानसून वर्षा में दशकीय उतार-चढ़ाव पहले से दर्ज हैं [44]। उप-संभाग स्तर के विश्लेषण में अखिल भारतीय स्तर पर कोई सार्थक रैखिक प्रवृत्ति नहीं मिलती, परंतु कुछ उप-संभागों में घटती और कुछ में बढ़ती प्रवृत्तियाँ पाई गई [48]।

तापमान। 1901–2003 में भारत के औसत सतही तापमान में लगभग 0.68 °C प्रति शताब्दी की वृद्धि दर्ज हुई [45]। भारतीय क्षेत्र के जलवायु-परिवर्तन पर भारत सरकार के पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय के आकलन के अनुसार 1901–2018 में औसत तापमान लगभग 0.7 °C बढ़ा [50]। उसी आकलन के अनुसार 1951–2015 में ग्रीष्म-मानसून वर्षा में लगभग 6% की कमी दर्ज हुई [50]।

चरम घटनाएँ। मध्य भारत में 1951–2000 के विश्लेषण में अत्यंत भारी वर्षा (प्रतिदिन 100 मिमी से अधिक) की घटनाओं में सार्थक वृद्धि और मध्यम वर्षा-घटनाओं में कमी पाई गई [46]। 104 वर्षों के दैनिक ग्रिड-डेटा पर आधारित विश्लेषण ने चरम वर्षा-घटनाओं में दशकीय परिवर्तनशीलता और क्षेत्रीय प्रवृत्तियाँ दिखाई [47]। अधिक हाल के अध्ययन ने 1950–2015 में मध्य भारत में व्यापक चरम वर्षा-घटनाओं में लगभग तीन गुना वृद्धि दर्ज की [49]।

विश्लेषण: इन साक्ष्यों से दो निष्कर्ष निकलते हैं। (क) वर्षा का कुल मान उतना नहीं बदला, जितना उसका वितरण (कम घटनाएँ, अधिक तीव्रता) बदला है। (ख) इससे पारंपरिक ऋतु-अपेक्षा (अर्थात् श्रावण-भाद्रपद में सतत, मध्यम वर्षा) और वास्तविक वर्षा-प्रकृति के बीच अंतर बढ़ा है, जिसे समुदाय अपने स्थानीय अनुभव में "ऋतु का बिगड़ना" कहते हैं।

पुरा-जलवायु का दीर्घपरिप्रेक्ष्य। विगत सहस्राब्दी के वृक्ष-वलय-आधारित एशियाई मानसून आँकड़े बड़े महासूखों की पहचान कराते हैं [51]। पिछले दो हजार वर्षों की भारतीय ग्रीष्म-मानसून वर्षा के पुनर्निर्माण में प्रवृत्तियाँ और दोलन दिखे हैं [52]। सिंधु-हड़प्पा सभ्यता के अंत-काल (लगभग 4.2 हजार वर्ष पूर्व) के साथ मानसून-दुर्बलता के संबंध पर अध्ययन हैं [53], और नदी-भू-दृश्य के परिवर्तन ने भी इस बहस को नया आधार दिया है [54]। ये शोध एक सावधान सीख देते हैं: मानसून सदैव स्थिर नहीं रहा, इसलिए "सनातन ऋतु-नियमितता" की धारणा ऐतिहासिक रूप से सरलीकृत है।

4.7 वैश्विक फिनोलॉजी-साक्ष्य और तुलना

फिनोलॉजी (जैव-ऋतु विज्ञान) जैविक घटनाओं (पुष्पन, पत्तियों का फूटना, प्रवास) के समय का अध्ययन है और पारंपरिक ऋतु-संकेतों से सर्वाधिक निकटता रखती है। यूरोपीय और वैश्विक अध्ययन ऋतु-आरंभ में परिवर्तन के सुसंगत संकेत देते हैं [55]। एक व्यापक मेटा-विश्लेषण में वसंत की घटनाओं का औसत अग्रगमन लगभग 2.3 दिन प्रति दशक और प्रजातियों की सीमा का ध्रुवों की ओर खिसकाव लगभग 6.1 किमी प्रति दशक पाया गया [56]। उसी समय के एक अन्य संकलन में वसंत-घटनाओं में लगभग 5.1 दिन प्रति दशक का अग्रगमन मिला [57]। यूरोप में 1971–2000 के आँकड़ों में वसंत और ग्रीष्म की घटनाएँ लगभग 2.5 दिन प्रति दशक अग्रसर हुईं और यह पैटर्न तापन के क्षेत्रीय रूप से संगत था [58]। उत्तरी गोलार्ध के उपग्रह और भू-अभिलेख भी वसंत के आरंभ के पहले आने के संकेत देते हैं [59]। वनस्पति-फिनोलॉजी की समीक्षाएँ तापमान को प्रमुख कारक बताती हैं और प्रजातियों की भिन्न प्रतिक्रियाओं से पारिस्थितिक समुदायों के पुनर्गठन की संभावना जताती हैं [60]। ब्रिटेन के दीर्घकालिक बहु-प्रजाति अभिलेखों ने पोषण-स्तरों के बीच भिन्न प्रतिक्रिया-गति और इससे समय-असंगति (mismatch) का जोखिम दिखाया [61]।

तुलनात्मक टिप्पणी: ये अध्ययन समशीतोष्ण क्षेत्रों के हैं। भारत में फिनोलॉजी के दीर्घकालिक संगठित अभिलेख सीमित हैं, इसलिए लोक-पंचांग और कृषि-डायरियों का यदि व्यवस्थित डिजिटलीकरण हो तो वह उस अभाव की पूर्ति का एक संभावित स्रोत बन सकता है। यह एक शोध-प्रस्ताव है, स्थापित परिणाम नहीं।

4.8 स्थानीय एवं वैज्ञानिक ज्ञान का समन्वय: अंतरराष्ट्रीय तुलना

बुर्किना फासो में किसान वर्षा-पूर्वानुमान के लिए स्थानीय संकेतों और मौसम-सेवा की सूचनाओं का मिश्रित उपयोग करते हैं [62]। दक्षिणी युगांडा में स्थानीय जलवायु-ज्ञान एक गतिशील क्षेत्रीय तंत्र के रूप में कार्य करता है, जिसके अनेक घटक हैं [63]। केन्या के अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में सूखे के संदर्भ में स्थानीय ज्ञान की उपयोगिता और उसकी सीमाएँ दोनों दर्ज हुई हैं [64]। स्थानीय और वैज्ञानिक जलवायु-ज्ञान को जोड़ने के अध्ययन में परस्पर पूरकता और पैमाने की असंगतियाँ दोनों पहचानी गईं [65]। यह सब भारतीय परंपरा के लिए तुलनात्मक संदर्भ है: परंपरा-ज्ञान का मूल्य तब सर्वाधिक है जब वह वैज्ञानिक आँकड़ों के साथ सत्यापन-योग्य रूप में जुड़े।

5. संबंधित शोध-समीक्षाएँ और उनके निष्कर्ष

तालिका 1: चयनित संबंधित समीक्षाएँ/अध्ययन, परिणाम और विश्लेषणात्मक टिप्पणी

क्र.	अध्ययन [संदर्भ]	प्रकार / दायरा	मुख्य परिणाम (संक्षेप)	इस अध्ययन के लिए निहितार्थ
1	Berkes व अन्य, 2000 [3]	संकल्पनात्मक समीक्षा, पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान	पारंपरिक ज्ञान अनुकूली प्रबंधन और फीडबैक-आधारित सीख का स्रोत है	पंचांग/ऋतुचर्या को केवल सूचना नहीं, अनुकूली संस्था के रूप में देखने का आधार
2	Agrawal, 1995 [10]	आलोचनात्मक विश्लेषण	देशज और वैज्ञानिक ज्ञान के बीच द्वैत अतिरंजित है	पारंपरिक/आधुनिक का सरल विभाजन उचित नहीं
3	Alexander व अन्य, 2011 [65]	संश्लेषण	स्थानीय और वैज्ञानिक जलवायु-ज्ञान पूरक हैं; पैमाने की असंगति रहती है	सत्यापन-ढाँचे में स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर का संयोजन
4	Tengö व अन्य, 2014 [68]	कार्य-ढाँचा	बहु-साक्ष्य-आधार दृष्टिकोण; ज्ञान-प्रणालियों का समानांतर सत्यापन	भारतीय पंचांग-आँकड़ों के सह-उत्पादन की पद्धति
5	Ford व अन्य, 2016 [66]	IPCC रिपोर्टों में स्थानीय ज्ञान के समावेश की समीक्षा	मूल्यांकन-रिपोर्टों में स्थानीय ज्ञान का समावेश अपर्याप्त और असमान है	नीति-स्तर पर भारतीय पारंपरिक ज्ञान को औपचारिक स्थान देने की आवश्यकता
6	Mistry व Berardi, 2016 [67]	नीति-विचार	स्थानीय-वैज्ञानिक ज्ञान का सेतु बराबरी की साझेदारी और सह-उत्पादन माँगता है	शोध-नैतिकता: समुदाय को केवल "डेटा-स्रोत" न मानना
7	Parmesan व Yohe, 2003 [56]	मेटा-विश्लेषण (1,700 से अधिक प्रजातियाँ)	वसंत-घटनाएँ लगभग 2.3 दिन/दशक अग्रसर; सीमा-विस्थापन लगभग 6.1 किमी/दशक	ऋतु-संकेतों के वास्तविक जैविक सहसंबंध का वैश्विक प्रमाण
8	Root व अन्य, 2003 [57]	मेटा-विश्लेषण (143 अध्ययन)	वसंत-घटनाएँ लगभग 5.1 दिन/दशक अग्रसर	परिणाम की दिशा संगत; परिमाण पद्धति के अनुसार भिन्न
9	Thackeray व अन्य, 2016 [61]	ब्रिटेन के दीर्घकालिक बहु-प्रजाति अभिलेख	पोषण-स्तरों में भिन्न प्रतिक्रिया-गति; असंगति का जोखिम	भारतीय पर्व-फसल-कीट-पक्षी कैलेंडरों के सह-विश्लेषण की माँग
10	Goswami व अन्य, 2006; Roxy व अन्य, 2017 [46,49]	भारतीय चरम वर्षा का प्रवृत्ति-विश्लेषण	अत्यधिक भारी वर्षा-घटनाओं में वृद्धि; मध्यम वर्षा-घटनाओं में कमी	"ऋतु-नियमितता" के पारंपरिक अनुमान में वितरण-परिवर्तन का दबाव
11	Krishnan व अन्य, 2020 [50]	राष्ट्रीय जलवायु आकलन	तापमान में लगभग 0.7 °C वृद्धि (1901–2018); मानसून वर्षा में लगभग 6% कमी (1951–2015)	भारतीय संदर्भ में आधुनिक आधार-रेखा

समीक्षाओं का समग्र निष्कर्ष: (क) अधिकांश समीक्षाएँ मानती हैं कि पारंपरिक ज्ञान का मूल्य *सत्यापन-योग्य सहभागिता* में निहित है [3,65,68]। (ख) वैश्विक फिनोलॉजी-प्रमाण यह संकेत देते हैं कि ऋतु-आधारित जैविक संकेत वास्तविक हैं और बदल रहे हैं [56,57,61]। (ग) भारतीय वर्षा-आँकड़े बताते हैं कि परिवर्तन औसत में कम और वितरण में अधिक है [46,49,50]। (घ) पारंपरिक ज्ञान के समावेश की नीतिगत स्थिति अभी भी कमजोर है [66]।

6. विभिन्न दृष्टिकोणों से विश्लेषण

(क) खगोलीय-गणितीय दृष्टि। तालिका 2 दर्शाती है कि सिद्धान्त-ज्योतिष के कालमान अत्यंत परिशुद्ध हैं। परंतु यह परिशुद्धता *नाक्षत्र* मापदंड पर है, जबकि ऋतु *सायन* (उष्णकटिबंधीय) चक्र से बंधी है। इसलिए गणितीय उत्कृष्टता और ऋतु-संगति दो अलग गुण हैं। इसी कारण राष्ट्रीय पंचांग के लिए सायन आधार अपनाना पड़ा [29]।

(ख) पारिस्थितिक दृष्टि। अथर्ववेद का पृथ्वी-सूक्त, गीता का चक्र-सिद्धांत और शान्ति-पाठ पर्यावरण को परस्पर निर्भर तंत्र के रूप में देखते हैं [17,18,24]। यह दृष्टि आधुनिक पारिस्थितिकी के अनुरूप है। फिर भी पारिस्थितिक इतिहास सावधान करता है कि पारंपरिक व्यवस्थाओं के भीतर भी संसाधन-असमानता और शोषण रहा है [9]। अतः पर्यावरण-नैतिकता का सांस्कृतिक आदर्श और उसका ऐतिहासिक व्यवहार अलग-अलग जाँच माँगते हैं।

(ग) चिकित्सा और काल-जैविक दृष्टि। ऋतुचर्या का सिद्धांत ऋतु-आधारित जैविक अनुकूलन की धारणा से संगत है [32,36]। किंतु नैदानिक प्रमाण-स्तर अभी सीमित है [35]। इसलिए इसे "सिद्ध" कहने के स्थान पर "परिकल्पना-योग्य और परीक्षण-योग्य" कहना वैज्ञानिक रूप से उचित है।

(घ) समाजशास्त्रीय-सांस्कृतिक दृष्टि। पर्व, संस्कार और भाषा ऋतु-ज्ञान के संचरण-वाहक रहे हैं [5-7]। ग्रामीण से शहरी प्रवास और शिक्षा-माध्यम के परिवर्तन के साथ यह संचरण कमजोर हो सकता है, इसलिए शिक्षा और स्थानीय दस्तावेजीकरण का प्रश्न केंद्रीय है। पर्यावरण-संरक्षण में महिलाओं की पारंपरिक भूमिका का अध्ययन भी बताता है कि ज्ञान-धारकों की पहचान और उनका सशक्तीकरण उतना ही आवश्यक है जितना ज्ञान का अभिलेखन [8]।

(ङ) विज्ञान-इतिहास की आलोचनात्मक दृष्टि। वेदाङ्ग-ज्योतिष और ऋग्वैदिक संख्याओं के काल और व्याख्या पर तीव्र मतभेद हैं [19,20,22]। कुछ व्याख्याएँ अत्यंत प्राचीन खगोलीय ज्ञान का दावा करती हैं और कुछ बाह्य प्रभाव को निर्णायक मानती हैं। निष्पक्ष शोध में दोनों पक्षों के तर्कों को दर्ज करना और अपुष्ट दावों से बचना आवश्यक है।

(च) नीति और शासन की दृष्टि। अंतरराष्ट्रीय जलवायु आकलनों में स्थानीय ज्ञान का समावेश अब भी कम है [66]। भारत के लिए व्यावहारिक मार्ग यह है कि पंचांग और लोक-फिनोलॉजी के आँकड़ों को मौसम-विज्ञान विभाग, कृषि विश्वविद्यालयों और पंचायतों के साझा ढाँचे में सह-उत्पादित किया जाए, जैसा कि बहु-साक्ष्य-आधार दृष्टिकोण सुझाता है [67,68]।

7. चर्चा

इस अध्ययन के चार प्रमुख निष्कर्ष विश्लेषणात्मक रूप से उभरते हैं।

पहला, पारंपरिक काल-मान प्रणाली कोई एकरूप "प्राचीन विज्ञान" नहीं, बल्कि कई स्तरों का मिश्रण है: वैदिक रूपक और नैतिकता, वेदाङ्ग-काल की प्रारंभिक गणित, सिद्धान्त-काल की उच्च-परिशुद्ध गणना और आयुर्वेद एवं कृषि की क्रियात्मक परंपराएँ। इन्हें एक ही मापदंड से परखना भ्रामक है।

दूसरा, तालिका 2 का मात्रात्मक निष्कर्ष परंपरा के पक्ष में भी है और उसकी सीमा भी बताता है। परिशुद्धता प्रभावी है, पर नाक्षत्र आधार के कारण ऋतु-विचलन अपरिहार्य है।

तीसरा, आधुनिक भारतीय जलवायु-साक्ष्य बताते हैं कि समस्या वर्षा-वितरण की तीव्रता और अनिश्चितता में है। इस कारण स्थानीय समुदायों का "ऋतु-बिगड़ने" का अनुभव एक वास्तविक संकेत हो सकता है, जिसे डेटा से जाँचना चाहिए।

चौथा, तुलनात्मक अंतरराष्ट्रीय अध्ययन [62–65] दर्शाते हैं कि स्थानीय ज्ञान का सर्वश्रेष्ठ उपयोग तब होता है जब वह वैज्ञानिक सेवाओं के पूरक के रूप में, समुदाय की भागीदारी के साथ अपनाया जाए।

शोध-निहितार्थ: भविष्य में तीन अध्ययन विशेष रूप से उपयोगी होंगे: (i) विभिन्न कृषि-जलवायु क्षेत्रों में लोक-पंचांग के ऋतु-संकेतकों का IMD आँकड़ों से सांख्यिकीय सत्यापन; (ii) ऋतुचर्या के कुछ चयनित निर्देशों का नियंत्रित नैदानिक परीक्षण; (iii) सायन-निरयण पंचांग-विचलन के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव (पर्व-ऋतु असंगति) का सर्वेक्षण।

8. निष्कर्ष

पारंपरिक काल-मान पद्धतियाँ आधुनिक जलवायु-विज्ञान की प्रतिस्थापक नहीं, बल्कि पूरक हैं। उनकी प्रासंगिकता चार रूपों में प्रमाणित होती है: (1) **पारिस्थितिक नैतिकता** का सांस्कृतिक स्रोत; (2) **खगोलीय परिशुद्धता** का ऐतिहासिक प्रमाण; (3) **फिनोलॉजी और स्थानीय अनुकूलन** के परिकल्पना-स्रोत; (4) **सामुदायिक संचरण** के माध्यम। उनकी सीमाएँ भी उतनी ही स्पष्ट हैं: निरयण-विचलन, भौगोलिक असमानता, अपुष्ट पूर्वानुमान-नियम और सीमित नैदानिक सत्यापन। इसलिए नीति और शोध का मार्ग "आस्था बनाम विज्ञान" का नहीं, बल्कि **सत्यापन-योग्य सह-उत्पादन** का है।

9. अध्ययन की सीमाएँ

(क) यह स्कोपिंग समीक्षा है, मेटा-विश्लेषण नहीं; (ख) बाह्य स्रोतों का चयन उद्देश्यपूर्ण है, किसी डेटाबेस की औपचारिक खोज-स्ट्रिंग पर आधारित नहीं; (ग) 2024 के बाद के स्रोत जानबूझकर बाहर रखे गए, अतः सबसे ताज़ा निष्कर्ष शामिल नहीं हैं; (घ) तालिका 2 के पारंपरिक मान युग-संख्याओं से लेखक-गणित हैं और ग्रंथों की पाठ-परंपरा में रूपांतर संभव है; (ङ) श्लोक-संख्याएँ संस्करण के अनुसार भिन्न हो सकती हैं।

संदर्भ

1. Gadgil S. The Indian monsoon and its variability. *Annu Rev Earth Planet Sci.* 2003;31:429-67.
2. Intergovernmental Panel on Climate Change. Climate change 2021: the physical science basis. Contribution of Working Group I to the Sixth Assessment Report. Cambridge: Cambridge University Press; 2021.
3. Berkes F, Colding J, Folke C. Rediscovery of traditional ecological knowledge as adaptive management. *Ecol Appl.* 2000;10(5):1251-62.
4. Berkes F. Sacred ecology. 3rd ed. New York: Routledge; 2012.
5. Ahluwalia PS. संस्कार और संस्कृति: समाजशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन. *शब्दसागर.* 2023;17-25.
6. Ahluwalia PS. भाषा, संस्कार और संस्कृति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण. *शब्दसागर.* 2023;35-41.

7. Ahluwalia PS. भाषा और संस्कृति के विकास में संस्कारों का महत्व: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन. शब्दसागर. 2024;1-8.
8. Ahluwalia PS. वैश्विक परिदृश्य में पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं का योगदान. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2024;107-23.
9. Gadgil M, Guha R. This fissured land: an ecological history of India. Delhi: Oxford University Press; 1992.
10. Agrawal A. Dismantling the divide between indigenous and scientific knowledge. Dev Change. 1995;26(3):413-39.
11. Tricco AC, Lillie E, Zarin W, O'Brien KK, Colquhoun H, Levac D, et al. PRISMA extension for scoping reviews (PRISMA-ScR): checklist and explanation. Ann Intern Med. 2018;169(7):467-73.
12. Page MJ, McKenzie JE, Bossuyt PM, Boutron I, Hoffmann TC, Mulrow CD, et al. The PRISMA 2020 statement: an updated guideline for reporting systematic reviews. BMJ. 2021;372:n71.
13. Arksey H, O'Malley L. Scoping studies: towards a methodological framework. Int J Soc Res Methodol. 2005;8(1):19-32.
14. Ahluwalia PS. Ethical issues in social science research. Shodh Patra Int J Multidiscip Stud. 2024;1-8.
15. Ahluwalia PS. Plagiarism: detection techniques and tools. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2024;1-11.
16. Jamison SW, Brereton JP. The Rigveda: the earliest religious poetry of India. New York: Oxford University Press; 2014.
17. Whitney WD. Atharva-Veda Samhita. Cambridge (MA): Harvard University; 1905.
18. Griffith RTH. The texts of the White Yajurveda. Benares: E.J. Lazarus; 1899.
19. Kuppanna Sastry TS, Sarma KV. Vedanga Jyotisa of Lagadha in its Rk and Yajus recensions. New Delhi: Indian National Science Academy; 1985.
20. Pingree D. Jyotiḥśāstra: astral and mathematical literature. Wiesbaden: Otto Harrassowitz; 1981.
21. Ohashi Y. Development of astronomical observation in Vedic and post-Vedic India. Indian J Hist Sci. 1993;28(3):185-251.
22. Kak S. The astronomical code of the Rigveda. New Delhi: Munshiram Manoharlal; 2000.
23. Olivelle P. Manu's code of law: a critical edition and translation of the Mānava-Dharmaśāstra. New York: Oxford University Press; 2005.
24. Sargeant M. The Bhagavad Gita. Albany: State University of New York Press; 1984.
25. Burgess E. Translation of the Surya-Siddhanta, a text-book of Hindu astronomy. J Am Orient Soc. 1858;6:141-498.
26. Shukla KS. Aryabhatiya of Aryabhata. New Delhi: Indian National Science Academy; 1976.
27. Plofker K. Mathematics in India. Princeton: Princeton University Press; 2009.
28. Sen SN, Shukla KS, editors. History of astronomy in India. New Delhi: Indian National Science Academy; 1985.
29. Chatterjee SK. Indian calendric system. New Delhi: Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting; 1998.

30. Sewell R, Dikshit SB. The Indian calendar. London: Swan Sonnenschein; 1896.
31. Kane PV. History of Dharmaśāstra. Vol. 5, part 1. Poona: Bhandarkar Oriental Research Institute; 1958.
32. Murthy KRS. Vagbhata's Astanga Hridayam. Varanasi: Krishnadas Academy; 1991.
33. Sharma PV. Suśruta-Saṁhitā with English translation of text. Varanasi: Chaukhambha Visvabharati; 1999.
34. Wujastyk D. The roots of Ayurveda. London: Penguin; 2003.
35. Patwardhan B, Warude D, Pushpangadan P, Bhatt N. Ayurveda and traditional Chinese medicine: a comparative overview. Evid Based Complement Alternat Med. 2005;2(4):465-73.
36. Foster RG, Roenneberg T. Human responses to the geophysical daily, annual and lunar cycles. Curr Biol. 2008;18(17):R784-94.
37. Bhat MR. Varāhamihira's Brhat Saṁhitā. Delhi: Motilal Banarsidass; 1981.
38. Olivelle P. King, governance, and law in ancient India: Kauṭilya's Arthaśāstra. New York: Oxford University Press; 2013.
39. Gadgil S, Rao PRS, Rao SK. Use of climate information for farm-level decision making: rainfed groundnut in southern India. Agric Syst. 2002;74(3):431-57.
40. Gadgil S, Gadgil S. The Indian monsoon, GDP and agriculture. Econ Polit Wkly. 2006;41(47):4887-95.
41. मिश्र अ. आज भी खरे हैं तालाब. नई दिल्ली: गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान; 1993.
42. Agarwal A, Narain S, editors. Dying wisdom: rise, fall and potential of India's traditional water harvesting systems. New Delhi: Centre for Science and Environment; 1997.
43. Parthasarathy B, Munot AA, Kothawale DR. All-India monthly and seasonal rainfall series: 1871-1993. Theor Appl Climatol. 1994;49(4):217-24.
44. Mooley DA, Parthasarathy B. Fluctuations in all-India summer monsoon rainfall during 1871-1978. Clim Change. 1984;6(3):287-301.
45. Kothawale DR, Rupa Kumar K. On the recent changes in surface temperature trends over India. Geophys Res Lett. 2005;32:L18714.
46. Goswami BN, Venugopal V, Sengupta D, Madhusoodanan MS, Xavier PK. Increasing trend of extreme rain events over India in a warming environment. Science. 2006;314(5804):1442-5.
47. Rajeevan M, Bhate J, Jaswal AK. Analysis of variability and trends of extreme rainfall events over India using 104 years of gridded daily rainfall data. Geophys Res Lett. 2008;35:L18707.
48. Guhathakurta P, Rajeevan M. Trends in the rainfall pattern over India. Int J Climatol. 2008;28(11):1453-69.
49. Roxy MK, Ghosh S, Pathak A, Athulya R, Mujumdar M, Murtugudde R, et al. A threefold rise in widespread extreme rain events over central India. Nat Commun. 2017;8:708.
50. Krishnan R, Sanjay J, Gnanaseelan C, Mujumdar M, Kulkarni A, Chakraborty S, editors. Assessment of climate change over the Indian region. Singapore: Springer; 2020.

51. Cook ER, Anchukaitis KJ, Buckley BM, D'Arrigo RD, Jacoby GC, Wright WE. Asian monsoon failure and megadrought during the last millennium. *Science*. 2010;328(5977):486-9.
52. Sinha A, Kathayat G, Cheng H, Breitenbach SFM, Berkelhammer M, Mudelsee M, et al. Trends and oscillations in the Indian summer monsoon rainfall over the last two millennia. *Nat Commun*. 2015;6:6309.
53. Staubwasser M, Sirocko F, Grootes PM, Segl M. Climate change at the 4.2 ka BP termination of the Indus valley civilization and Holocene south Asian monsoon variability. *Geophys Res Lett*. 2003;30(8):1425.
54. Giosan L, Clift PD, Macklin MG, Fuller DQ, Constantinescu S, Durcan JA, et al. Fluvial landscapes of the Harappan civilization. *Proc Natl Acad Sci U S A*. 2012;109(26):E1688-94.
55. Sparks TH, Menzel A. Observed changes in seasons: an overview. *Int J Climatol*. 2002;22(14):1715-25.
56. Parmesan C, Yohe G. A globally coherent fingerprint of climate change impacts across natural systems. *Nature*. 2003;421(6918):37-42.
57. Root TL, Price JT, Hall KR, Schneider SH, Rosenzweig C, Pounds JA. Fingerprints of global warming on wild animals and plants. *Nature*. 2003;421(6918):57-60.
58. Menzel A, Sparks TH, Estrella N, Koch E, Aasa A, Ahas R, et al. European phenological response to climate change matches the warming pattern. *Glob Change Biol*. 2006;12(10):1969-76.
59. Schwartz MD, Ahas R, Aasa A. Onset of spring starting earlier across the Northern Hemisphere. *Glob Change Biol*. 2006;12(2):343-51.
60. Cleland EE, Chuine I, Menzel A, Mooney HA, Schwartz MD. Shifting plant phenology in response to global change. *Trends Ecol Evol*. 2007;22(7):357-65.
61. Thackeray SJ, Henrys PA, Hemming D, Bell JR, Botham MS, Burthe S, et al. Phenological sensitivity to climate across taxa and trophic levels. *Nature*. 2016;535(7611):241-5.
62. Roncoli C, Ingram K, Kirshen P. Reading the rains: local knowledge and rainfall forecasting in Burkina Faso. *Soc Nat Resour*. 2002;15(5):409-27.
63. Orlove B, Roncoli C, Kabugo M, Majugu A. Indigenous climate knowledge in southern Uganda: the multiple components of a dynamic regional system. *Clim Change*. 2010;100(2):243-65.
64. Speranza CI, Kiteme B, Ambenje P, Wiesmann U, Makali S. Indigenous knowledge related to climate variability and change: insights from droughts in semi-arid areas of former Makueni District, Kenya. *Clim Change*. 2010;100(2):295-315.
65. Alexander C, Bynum N, Johnson E, King U, Mustonen T, Neofotis P, et al. Linking indigenous and scientific knowledge of climate change. *BioScience*. 2011;61(6):477-84.
66. Ford JD, Cameron L, Rubis J, Maillet M, Nakashima D, Willox AC, et al. Including indigenous knowledge and experience in IPCC assessment reports. *Nat Clim Chang*. 2016;6:349-53.
67. Mistry J, Berardi A. Bridging indigenous and scientific knowledge. *Science*. 2016;352(6291):1274-5.
68. Tengö M, Brondizio ES, Elmqvist T, Malmer P, Spierenburg M. Connecting diverse knowledge systems for enhanced ecosystem governance: the multiple evidence base approach. *Ambio*. 2014;43(5):579-91.